ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-10* November- 2017
Innovation The Research Concept

18वीं सदी के राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था – एक अध्ययन (पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में)

फूलसिंह सहारिया
एसोसिएट प्रोफेसर,
इतिहास विभाग,
बाबू शोभाराम कला
महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

वैदिक काल से शिक्षा व्यवस्था ब्राह्मण वर्ण के अधिकार में रही है। यह व्यवस्था पूर्णतः ब्राह्मणों के हाथों में रही है जिसके शिष्य ब्राह्मण या क्षत्रिय ही होते थे जिनको शिक्षा दी जाती थी और यह व्यवस्था अंग्रेजों के आगमन तक रही। राजस्थान में भी 18वीं सदीतक यही व्यवस्था रही। मैंने पश्चिमी राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था : एक अध्ययन को आधार बनाकर शोध लेख प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्द : शिक्षा व्यवस्था, राजपूताना, राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक चेतना।

प्रस्तावना

मानव के जीवन में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा के अभाव में मनुष्य पशुवत होता है। मनुष्य के माता–पिता उसकी प्रथम पाठशाला होते हैं। तत्पश्चात गुरू के सम्पर्क में आने पर मनुष्य सभ्य एवं सुसंस्कृत बनता है। भारत में प्राचीन काल से ही शिक्षा का महत्व रहा है। हमारी प्राचीन शिक्षा व्यवस्था गुरूकुलों में दी जाती थी। शिक्षा देने का कार्य ब्राह्मणों तथा ऋषियों का ही था। मध्यकालीन भारतीय इतिहास सामाजिक परिवर्तन की दृष्टि से प्रभावकारी गतिविधियों का काल रहा है। शिक्षा चाहे औपचारिक हो या अनौपचारिक वह ऐसे विचारों की प्रमुख वाहक है जो सामाजिक दर्शन और विज्ञान की प्रेरणा का काम करते हैं। धर्म उसी दर्शन और विज्ञान का प्रतिफल है। सातवीं सदी में भारत में इस्लाम का प्रवेश हुआ और ग्यारहवीं एवं बारहवीं सदी में तुर्क आक्रमणों के बाद तेजी से उसका प्रसार बढ़ा। उस समय भारतीय समाज कठोर जातीय बन्धनों में बंधा हुआ था तथा ग्रामीण अर्थ व्यवस्था प्रचलित थी। तुर्कों के आक्रमण के साथ सीमान्त क्षेत्रों में बसे अनेक शूद्रों ने भारत के नगरों में प्रवेश किया। धर्म परिवर्तन भी होने लगा। इस प्रकार भारत में उच्च वर्ग को राजनीतिक और सामाजिक दोनों ही चुनौतियों का सामना करना पड़ा था। इस संक्रमित युग से गुजरता हुआ भारतीय समाज अविश्वास और परस्पर सन्देह के युग में जीने लगा। भारत किसी समय विश्वविद्यालय स्तर की शिक्षा के लिए विख्यात था लेकिन जो अब भारतीय समाज अविश्वास और संदेह के युग में जीने लगा। बदलते परिवेश में धर्म और शिक्षा का सकारात्मक समन्वय, समाज के उत्थान के सहयोगी के रूप में 14वीं सदी से 17वीं सदी के रूप में देखा जा सकता है।[1] प्राचीन भारतीय परम्परावादी शिक्षा व्यवस्था की तरह राजस्थान के मध्य युग में शिक्षा का महत्व रहा है। इस काल में शिक्षा विशेष विचारधारा तथा उदेश्यों पर आधारित थी। शिक्षा का प्राथमिक उदेश्य आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक होने के साथ–साथ नैतिक तथा आध्यात्मिक थी। अर्थोपार्जन और बौद्धिक विकास के साथ–साथ शान्ति प्राप्त करना इस युग की शिक्षा का लक्ष्य था। इन लक्ष्यों की पूर्ति विभिन्न स्तरों के शिक्षा सस्थानों के द्वारा होती थी।[2]

अध्ययन का उद्देश्य

प्रस्तुत लेख 18वीं सदी के राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था – एक अध्ययन (पश्चिमी राजस्थान के विशेष संदर्भ में) प्रमाणिक लेखा–जोखा प्रस्तुत करता है। लेख के माध्यम से तत्कालीन परम्परागत शिक्षा व्यवस्था व उद्देश्यों को प्रकट करने का प्रयास किया गया है। वस्तुतः राजस्थान विशेषकर पश्चिमी राजस्थान सामंतवादी व्यवस्था का केन्द्र रहा है। यह क्षेत्र न केवल प्राकृतिक रूप से वरन् राजनैतिक–सामाजिक–आर्थिक चेतना की दृष्टि से भी पिछड़ा हुआ माना जाता था। जनचेतना के लिए शिक्षा महत्वपूर्ण घटक है। उचित शिक्षा व्यवस्था न होने या केवल सीमित लोगों के लिए शिक्षा उपलब्ध होने के कारण जनसमुदाय की बड़ी क्षति होती है। लोगों की जीवनशैली, व्यवसाय, भाषा व संस्कृति से शिक्षा का सीधा सम्बन्ध होता है। लेख में शिक्षा व्यवस्था व उसके माध्यम से तत्कालीन

सामाजिक जीवन स्तर के विभिन्न घटकों के मध्य परस्पर सम्बन्ध को समझाने का प्रयास किया गया है।

संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान था। शिक्षा मनुष्य को अन्धकार से निकालकर प्रकाश की ओर ले जाती है। मध्यकाल में शिक्षा का बड़ा महत्व था। पश्चिमी राजस्थान में वैदिक कालीन परम्परा के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। 18वीं सदी तक पश्चिमी राजस्थान में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति प्रचलित रही। शिक्षा का प्राथमिक ध्येय आर्थिक, सामाजिक और बौद्धिक होने के साथ नैतिक एवं आध्यात्मिक था। अर्थोपार्जन और बौद्धिक विकास के साथ परम शान्ति प्राप्त करना उस युग की शिक्षा का लक्ष्य था।[3] शिक्षा का ध्येय ज्ञान, व्यक्तिगत कल्याण और जीवन निर्वाह के साधन उपलब्ध करना था।[4]

शिक्षकों को अपने ढंग से शिक्षा देने की स्वतन्त्रता थी। रियासती सरकारें शिक्षकों और शिक्षण संस्थाओं को समय–समय पर आर्थिक अनुदान एवं भूमि देती थी।[5] परम्परागत शिक्षा का काफी प्रसार था। जोधपुर राज्य के सम्बन्ध में निक्सन ने लिखा है कि राज्य में 94 शाखाएँ थी जिनमें 2426 छात्र शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।[6]

मध्यकालीन राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था विभिन्न प्रकार से दी जाती थी जिसमें पारिवारिक शिक्षा, घरेलू शिक्षक, गुरूकुलों, मठों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की व्यवस्था भी थी। उच्च शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा संस्थाएं आधुनिक ज्ञान से बिल्कुल अलग तरह की थी।[7]

इस समय शिक्षा व्यवस्था सरकारी उत्तरदायित्व से मुक्त स्वायत–शासित थी। कुछ प्रचलित मान्यताओं के अनुसार धर्म से प्रभावित शिक्षा को देशी शिक्षा माना गया है। लेकिन यह उपयुक्त नहीं है क्योंकि प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा धर्म से प्रभावित होते हुए भी तर्क और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रभावित थी, जो कि आधुनिक शिक्षा की प्रमुख विशेषता के समकक्ष थी। निःसन्देह वैज्ञानिक दृष्टिकोण धीरे–धीरे बहुत सीमित होने लग गया था।

पश्चिमी राजस्थान में देशी शिक्षा

देशी शिक्षा धर्म, समन्वयवादी, तत्व, ज्ञान, रोजगार, व्यापारिक लाभ विस्तार और स्थायी निवास तथा व्यवसाय जैसे उदेश्य से प्रेरित थी।[8]

राजपूताना में मुख्यतः हिन्दू और मुस्लिम धर्म प्रचलित थे। उस समय की शिक्षा में घरेलू शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ था। पिता अपने पुत्र को ऊँची से ऊँची शिक्षा घर में ही दे दिया करता था। वह उसके लिए तथा अपने अन्य शिष्यों के लिए पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार करता था। उसके माध्यम से पीढी दर पीढी शिक्षा दी जाती थी। ऐसी पुस्तकें घर की सम्पत्ति समझी जाती थी जिनका बंटवारा भाइयों में स्थावर सम्पत्ति की तरह होता था।[9]

इस घरेलू शिक्षा का प्रचलन व्यावसायिक क्षेत्र में बडे पैमाने पर होता था। एक कुशल हस्तकार अपने पुत्र को अपने घर में ही अपने कौशल को सिखा देता था जिससे परम्परागत हस्त कौशल में एक उच्च स्तर स्थापित हो जाता था। ऐसी व्यावसायिक शिक्षा का वर्णन बाबर ने बाबरनामा में किया है। उस समय के बने हुए चित्र, जेवर, किले, महल आदि उस युग की दक्षता का प्रमाण पेश करते हैं जिनको बनाने वाले वही कुशल कलाकार थे। ये घर में रहकर पितृपरम्परा विधि से प्राप्त करते थे। खेती या वाणिज्य सम्बन्धी कुशलता इसी पद्धति से अर्जित करते थे।[10] घरेलु अध्ययन की विधि के साथ–साथ बस्तियों में शिक्षा केन्द्र होते थे जिनको एक गुरू अपने तत्वावधान में संचालित करता था। ये एक प्रकार से आश्रम होते थे। शिष्य गुरू की सेवा करता था। उसके व्यक्तिगत कार्य करता था साथ ही उसके चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त करता था। गुरू किसी प्रकार का शुल्क नहीं लेता था। परन्तु उसकी आवश्यकता की पूर्ति समृद्ध लोग या राजा कर दिया करते थे। एकलिंग माहात्मय में सोम शर्मा का वर्णर आता है जो सभी वेदों तथा शास्त्रों में अपने शिष्यों को पारंगत करता था। ऐसे गुरू को कभी उसके जीवन निर्वाह के लिए दानी शासक गांव की सम्पूर्ण आय उनको दान में दे देता था। इस आय से आचार्य अपने जीवन का निर्वाह करता था। ये आचार्य शिष्यों को विद्या का वितरण करते रहते थे।[11]

संस्थाओं या गुरूकुलों के अतिरिक्त पश्चिमी राजस्थान के नगरों और कस्बों में जैन उपासरे भी शिक्षा देने का कार्य करते थे। जैन साधु सतत रूप से शिक्षा को बढावा देने में प्रयत्नशील रहते थे। वे अपने शिष्यों के लिए उपयोगी ग्रन्थों की प्रतिलिपियां तैयार करते थे और जन साधारण को पढ़ने हेतु वितरित कर शिक्षित बनाते थे। इन उपासरों में सभी विषयों की हस्तलिखित पुस्तकें रहती थी जो जैन साधुओं के द्वारा लिखी गई थी। समृद्ध व्यक्ति ऐसे उपासरों का निर्माण कराते थे जिनमें साधु निवास करते थे और शिष्य परम्परा को परिवर्धित करते रहते थे। मठों में भी शिक्षा का प्रबन्ध रहता था जहां साधु और सन्त शिक्षा सम्बन्धी चर्चा, व्याख्यान आदि के माध्यम से शिक्षा का प्रचार करते थे। उदयपुर का सविनाखेड़ा तथा प्रागदास स्थल शिक्षा के प्रचार के केन्द्र थे।[12] गांवो तथा कस्बों में शिक्षा का प्रचार स्थानीय अध्यापक द्वारा होता था। पाठशाला, नेशाल, पोसाल आदि में आस–पास रहने वाले शिक्षा पाते थे। ऐसी संस्थाओं का भार स्थानीय जनता पर रहता था जो खेती या व्यवसाय के माध्यम से उपार्जन का भाग अध्यापक को फसल के समय दे दिया करते थे और आरम्भिक शिक्षा को प्रोत्साहन देते थे। कई चित्रित ग्रन्थों तथा मंदिरों की तक्षण कला के अवषेषों में स्थानीय पाठशालाओं में शिक्षा के क्रम को देखने का अवसर मिलता है। अध्यापक खुले मैदान में या छोटे छप्परों के नींचे बैठकर विद्यार्थियों को शिक्षा देता था और आवश्यकता पडने पर अपनी लम्बी बेंत से शिष्यों को दण्डित भी करते थे।[13]

16 वीं तथा 17 वीं शताब्दी के पुरालेखों तथा काव्य ग्रन्थों से पता चलता है कि पांच वर्ष से विद्यारम्भ कर 15 या 18 वर्ष तक की अवधि में विद्यार्थी विद्या के कई क्षेत्रों में पारंगत हो जाता था, क्योंकि सतत गुरू के सम्पर्क में रहने तथा रात–दिन पढ़ने का अवसर उसे प्राप्त होता था। त्योंहार व पर्व के दिनों, पूर्णिमा और अमावस्या को छोड़कर अवकाश जैसी कोई चीज नहीं थी। अष्टमी को पहले के पढाये सन्दर्भो का परायणता से याद करना होता था जिससे विद्या की उपस्थिति बनी रहती थी।

ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-10* November- 2017
Innovation The Research Concept

पढ़ने–पढ़ाने के विषय–वेद, शास्त्र, नीति, मीमांसा, धर्मशास्त्र, कर्मकाण्ड, पुराण, ज्योतिष, गणित, साहित्य, व्याकरण आदि प्रमुख थे। संगीत, नृत्य, चित्रकला, चिकित्सा आदि रोचक विषयों को भी शिक्षा में उचित स्थान दिया जाता था। सैनिक शिक्षा राज परिवार के व्यक्तियों को दी जाती थी। वाद–विवाद, तर्क–वितर्क, लेखन, कण्ठस्थ करना आदि पठन–पाठन के साधन माने जाते थे । कथा वार्ता द्वारा विद्यार्थियों को विषय पढाये जाते थे जिससे कठिन से कठिन विषय भी सुगम हो जाते थे। उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों को पंडित, उपाध्याय, महामहोपाध्याय, आचार्य आदि उपाधि दी जाती थी जिसकी बड़ी मान्यता होती थी। स्त्रियां भी शिक्षा में पीछे नहीं थी। कई विदुषी स्त्रियों के उल्लेख मिलते हैं।[14] मध्यकालीन शिक्षा व्यवस्था का विस्तार राज दरबारों, धर्मस्थानों, मठों, उपासरों आदि के माध्यम से या जो उस समय के पुस्तकालयों में संरक्षित हस्तलिखित ग्रन्थों से भी प्रमाणित होता है। इन पुस्तकों को लिखवाकर अनुदान करने के साथ जिल्दों में बन्धवाया जाता था। इन ग्रन्थों को लकड़ी की तख्तियों के बीच बांधकर सुरक्षित किया जाता था। जोधपुर पुस्तक प्रकाश, बीकानेर का अनूप संस्कृत पुस्तकालय आदि में उस युग की एक विशेष निधि है जो हमारे लिए एक वृहत कोष के रूप में संरक्षित हैं।[15]

राजपूताने में मुख्यतः हिन्दू–मुस्लिम धर्म प्रचलित थे। इन धर्मों से प्रेरित देशी शिक्षा का लक्ष्य या धर्म के मार्ग पर चलते हुए चरित्र निर्माण और आत्म विश्वास का विकास करते हुए जीवन की श्रेष्ठता को प्राप्त करना था। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में ज्ञान को मनुष्य का तीसरा नेत्र कहा है।[16] श्रेष्ठता का आधार भी बुद्धि को माना गया है।[17] इस्लाम धर्म में भी कहा गया है कि ईश्वर की प्राप्ति के लिए पढ़ना लिखना तथा ज्ञान और विद्वता से प्यार करने वाले का जन्नत में लेखा–जोखा नहीं किया जाता। ज्ञान चरित्र निर्माण का स्त्रोत माना गया था।[18] शिक्षा का दूसरा उदेश्य था प्रशासनिक समन्वय। हिन्दी, फारसी और अरबी भाषा का अध्ययन करने वाले मखतब व मदरसे तथा मुस्लिम भारतीय भाषा, इतिहास, साहित्य और अर्थतन्त्र को समझने के लिए पाठशाला जाने लगे या व्यक्तिगत रूप से अपने घर पर शिक्षक से अध्ययन करने लगे। जिस समय शक्ति, लोभ और नौकरी के लिए हिन्दुओं को इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जा रहा था उसी दौरान भक्ति और सूफी आन्दोलन ने दोनों धर्मावलम्बियों में जिज्ञासा को विकसित कर एक सांस्कृतिक और सामाजिक समन्वयवादी भावना को विकसित किया।[19]

सन्तों और फकीरों द्वारा स्थापित विभिन्न सम्पद्रायों द्वारा धार्मिक सौहार्द की भावना का प्रभाव राजनीति और सामाजिक जीवन पर भी पड़ा जो आगे चलकर अकबर की नीति में देखा जा सकता है। मुगल सम्राट अकबर ने धार्मिक और सामाजिक सौहार्द के माध्यम से ही साम्राज्य की एकता की स्थिरता प्रदान करने का प्रयत्न किया। महान सूफी सन्त सलीम चिश्ती के भक्त अकबर द्वारा शिक्षा के लिए किये गये प्रयत्नों से स्पष्ट होता है कि पाठ्यक्रम निर्धारण में उसने विशेष रूचि दिखाई। अकबर ने मदरसों में हिन्दू और मुसलमानों को समान रूप से शिक्षा दिलाने की व्यवस्था करवाई। अकबर का विचार था कि मदरसों में हिन्दुओं को केवल इस्लामिक शिक्षा[20] देने से साम्राज्य की सुरक्षा को खतरा हो सकता था। अकबर ने मदरसों में फारसी के साथ हिन्दू धर्म, दर्शन और साहित्य की शिक्षा की व्यवस्था की। अबुल फजल के साथ मिलकर नया पाठ्यक्रम तैयार किया। इसमें व्यवहारिक शिक्षा पर बल दिया। इसके अंतर्गत कहा गया कि विद्यार्थी को सदाचार, मापनशास्त्र, कृषि, ज्यामिति, नक्षत्रशास्त्र, शरीर विज्ञान, चिकित्साशास्त्र, तर्कशास्त्र, इतिहास पढना चाहिए।[21] भाषा ज्ञान के लिए फारसी के अतिरिक्त व्याकरण, पतंजलि के महाभाष्य, न्याय व वेदान्त भी पढ़ने चाहिए।[22] कभी–कभी सूफी मत के सिद्धान्त भी पढाये जाते थे।[23] मध्यकाल से लेकर 18 वीं सदी तक न केवल पश्चिमी राजस्थान में बल्कि सम्पूर्ण राजस्थान में शिक्षा के क्षेत्र में सूफी सन्तों और मुस्लिम शासकों का बड़ा महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

कुछ दस्तावेजों से ज्ञात होता है कि सम्पन्न परिवारों में लड़कियों को पढाने के लिए भी अध्यापक रखे जाते थे। इन अध्यापकों को शुल्क भी दिया जाता था। सांवली–गोरी बात में सांवली द्वारा अध्यापक को कुछ भेंट दिया जाता था।[24] प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में इनकी पढाई के विषय लड़कों को पढ़ाये जाने वाले विषय भिन्न नहीं थे। रासो ग्रन्थों से पता चलता है कि गणित, तक्षण कला, तर्क, साहित्य, ज्योतिष, नाट्य शास्त्र, संगीत, पुराण, औषधी–विज्ञान आदि विषय पढाये जाते थे। इन विषयों को पढ़ने वाली स्त्री पंडिता कहलाती थी।[25] राज परिवारों में तो निश्चित रूप से स्त्री शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था। इनकी शिक्षा विषय धर्मशास्त्र व पुराणों से सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त करना एवं पुस्तकें पढ़ना था। काफी संख्या में ऐसी पुस्तकें प्राप्त होती हैं जो रानियों, कुवरियों व पासवानों आदि के पढ़ने के लिए लिखी गई थी। कुछ पुस्तकों की रचना इन स्वयं ने लिखी थी। जोधपुर महाराजा विजयसिंह (1735–93 ई.) की पासवान गुलाव राय के लिए रामचरित लिखा गया था।[26] इनका दूसरा विषय धार्मिक व्रत व उपवासों की पुस्तकें पढना होता था। इन विषयों के अलावा संगीत, चित्रकला, नृत्य आदि भी इनके रोचक विषय थे।[27] संगीत व नृत्य की शिक्षा दी जाती थी। इनमें चित्र कला का भी प्रचलन था। चित्रों में अपने प्रिय के चित्र बनाना अधिक रूचिकर थे।[28] रानियों के अलावा पासवानों ने साहित्य में रूचि रखी थी। जोधपुर महाराज वख्तसिंह की प्रेयसी गायण भक्ति और साहित्य में विशेष रूचि रखती थी।[29] चारणों में स्त्रियां कवियित्रियां भी होती थी। दयालदास री ख्यात में एक ग्रंथ का उल्लेख है जिसने महाराणा अमरसिंह को युद्ध के लिए प्रेरित किया था। शासक की मृत्यु पर भी दोहे कहे गये।[30] कुछ प्रसिद्ध सुशिक्षित स्त्रियों के बारे में कहा जाता है कि उनमें कुछ विदुषी और सुशिक्षित होती थी। राजपरिवारों की रानियों द्वारा अपने भावों को प्रकट करने का एक साधन 'पत्र' भी थे।[31] उस समय कुछ पढ़े लिखे लोगों द्वारा दोहे भी लिखे जाते थे। ये अपरिपक्व व अतिरंजित भावों से युक्त होते थे।[32] जनानी डयोढ़ी में रहने वाली रानियों की आवश्यकताओं, जिनमें प्रमुख निर्धारित खान–पान की सामग्री तथा सालाना व्यय होता था, की जानकारी मिलती है। इनमें कहीं विनम्रता प्रदर्शित हुई है और सुविधा की

मांग की है। इस प्रकार सामाजिक उत्सवों आदि के नियम परम्पराओं के विषय पर चर्चा की गई।[33]

इस समय की शिक्षा व्यवस्था के तहत कुछ पत्र धार्मिक प्रेरणा से लिखे गये। जोधपुर राज्य से प्राप्त पत्रों जिनमें भाषा अत्यन्त सुसंस्कृत है जिसे हम अलंकारिक भी कह सकते हैं। महाराज विजयसिंह (1753–93 ई.) के काल में उनकी पासवान गुलावराय के कारण उन पर पुष्टि मार्गी वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव अधिक झलकता है। राजा की लम्बी उम्र की कामना करते हुए, प्रदत्त गांवों की आमदनी से हुई सुविधा के प्रति आभार प्रकट करते हुए रूपयों की हुण्डी प्राप्त हाने की सूचना देते हुए लिखा गया कि ये पत्र कुछ धार्मिक स्त्रियों, जिनमें प्रमुख यमुना बहुजी, ब्रह्मावती जी, रूकमणी बहु से प्राप्त हुए।[34] पासवान गुलाव राय द्वारा लिखे पत्रों से काफी ज्ञान की झलक मिलती है। पासवान के इन पत्रों का विषय भी हुण्डी पहुँचाने, उनके दर्शनों की तीव्र उत्कण्ठा दर्शाने एवं उनके द्वारा भेजे गये कृपा–पात्रों के प्रति आभार प्रकट करना था।[35]

जैन धर्म ग्रन्थों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः आयंग–सुत्त, अंगसूत्र, कृदंग समवायम तथा भगवती सूत्र आदि ग्रन्थ पढे जाते थे। कथाओं में सिद्धान्तों विपाक, ऋतम के अतिरिक्त स्वर्ग की कथाओं, अच्छे बुरे कर्मों के फल की जानकारी दी जाती थी। इस काल में अनेक जैन ग्रन्थों की रचना की गई–जैन दोहों, चौपाइयों आदि में नजलानी की सिखणी प्रमुख हैं। [36] अनेक जैन विद्वान हुए–शेखावटी में ज्ञान विमल, लब्ति विमल, जिनप्रभसूरी, विमल कीर्ति, वासु पूज्य आदि।[37] बीकानेर के कवि उदयचन्द[38] जैसलमेर के जैन अमरविजय, कविधर्म बदन आदि उल्लेखनीय हैं। इस्लामिक उच्च शिक्षा केन्द्र मदरसों का संचालन संभ्रान्त व्यक्ति की एक प्रबन्ध समिति द्वारा किया जाता था।[39] धार्मिक शिक्षा में दक्षता की दृष्टि से इस्लामिक कानून, कुरान पर टीका, दर्शनशास्त्र, सूफी दर्शन आदि थे तथा उच्च भौतिक ज्ञान के लिए गणित, भूगोल, चिकित्साशास्त्र, कानून, ज्योतिष विज्ञान, इलाही आदि का अध्ययन किया जाता था।[40]

18 वीं सदी तक पश्चिमी राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था का पारम्परिक ढाँचा था। शिक्षा केवल ब्राह्मणों एव राजपरिवारों तक सीमित थी। कहीं तक विभिन्न धर्मों ईस्लाम, जैन, सूफी सन्तों ने भी इसे बढाया। निम्न वर्ग या शूद्र वर्ण के लिए शिक्षा व्यवस्था वर्जित थी वही मध्यमवर्ग के वंशानुगत कार्यों का ही हस्तांतरण दिखाई देता है। निम्नवर्ग और निम्न कार्य करने वाले अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला सकते थे। वे केवल अपने बच्चों को स्वयं की कला और हाथ की कारीगरी का हुनर अपने पारिवारिक स्तर पर उनको सिखाते थे। उनमें शिक्षा के प्रति जागरूकता नहीं थी। यहां तक कि उच्चवर्ग वर्ण हमेशा शिक्षा का उदेश्य केवल व्यापार और स्वयं के व्यवसायों की जानकारी दिलाना था।[41] वैष्य वर्ग की कोशिश होती थी कि वे इतनी शिक्षा प्राप्त करे जिससे केवल व्यापार, वाणिज्य और बैंकिग में दक्षता हासिल हो सके। वे इससे संतुष्ट थे कि उनके बच्चे पढ़ना–लिखना और गणितीय ज्ञान प्राप्त कर सकें। व्यापारिक आधार पर पिता अपने पुत्र को तैयार करते थे। राजपूत लोग अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के लिए घरेलू शिक्षक की व्यवस्था करते थे। इनका भी इतना ही उद्देश्य होता था कि वे साक्षर हो जाये लेकिन वे इससे सन्तुष्ट नहीं थे। उच्च स्तरीय शिक्षा व्यवस्था में प्रशासन, न्याय, कला और विज्ञान की शिक्षा दिलाना अपवाद ही थे। राजपरिवार की महिलाओं को हरम (जनानाखाना) में शिक्षकों की व्यवस्था कर उनको अक्सर धार्मिक कहानियों, पुस्तकों का ज्ञान, मौखिक शिक्षा देते थे।[42]

निष्कर्ष

शासन की ओर से शिक्षा व्यवस्था नाम की कोई चीज नहीं थी। शिक्षा दीक्षा का कार्य जातिगत परम्पराओं पर आधारित था। कहा जा सकता है कि पश्चिमी राजस्थान में शिक्षा व्यवस्था ब्राह्मणों के हाथों में थी जो केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय (राजपूत) वर्ण के लोगों को दी जाती थी। वैश्य और शूद्र या यूं कहे निम्न वर्ण (जातियां) शिक्षा प्राप्त करने की सोच भी नहीं सकता था क्योंकि पश्चिमी राजस्थन में ऐसा कोई उदाहरण या उल्लेख प्राप्त नहीं होता है कि किसी निम्न वर्ण या वर्ग या जाति को शिक्षा की व्यवस्था की गई हो। ये व्यवस्था मानवता से दूर पक्षपातपूर्ण थी। अंग्रेजों का राजस्थान में आगमन होने के साथ शिक्षा का ढ़ांचा बदला। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने राजपूताने में विभिन्न स्कूल खोले जिसमें नरेशों के लिए अंग्रेजी शिक्षा हेतु अजमेर में मेयो कॉलेज की स्थापना की। तत्पश्चात् ये शिक्षा सभी वर्गों को दी जाने लगी। आजादी के पश्चात् संविधान में सभी को शिक्षा का अधिकार दिया गया जिसका परिणाम और प्रभाव आज देखा जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *डॉ. मीना गौड़ (सं.)–मध्यकालीन भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन, पृष्ठ–66 हिमांशु पब्लिकेषंस उदयपुर, 2009*
2. *सोम सौभाग्य काव्य, सर्ग 2, श्लोक 45–55*
3. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा– आधुनिक राजस्थान का इतिहास, पृष्ठ–518, ग्रंथ विकास, राजा पार्क, जयपुर– 2004*
4. *डॉ. गोपीनाथ शर्मा–सोशियल लाइफ इन मिडाईवल राजस्थान, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल ऐज्युकेशन पब्लिकेशंस, आगरा – 1968*
5. *कोटा रिकार्ड भण्डार न. 212, वस्ता न 76, राजस्थान राज्य अभिलेखागार बीकानेर*
6. *पो. क. ए. जुलाई 1864 न. 10–18, जोधपुर ऐजेन्सी रिपोर्ट पैरा 14, रा.रा.अभि. बीकानेर*
7. *डॉ. गापीनाथ शर्मा– राजस्थान थ्रो दी ऐजेज, पृष्ठ–346*
8. *ए.एस. अल्तेकर ऐज्युकेशन इन एनशियेन्टइंडिया इण्डिया, पृष्ठ–3*
9. *एकलिंगप्रशस्ति श्लोक 91–96*
10. *बवरनामा भाग–2, पृष्ठ–518, टेवर्नियर पृष्ठ–161*
11. *समिधेश्वर लेख वि. सं. 1485 (1428 ई.), गुणभाषा, पत्र–5, दक्षिणा मूर्ति इनसक्रप्सन वि.सं. 1770 (1713 ई.)*
12. *बीकानेर जैन लेख संग्रह, पृष्ठ–56*

13. वृहद् गुरूदावली, पृष्ठ–12
14. डॉ. गोपीनाथ शर्मा– सोशियल लाइफ इन मिडाईवल राजस्थान, पृष्ठ–271–279
15. स्याह हजूर,न. 128, वि.सं. 1791 (1734 ई.), दस्तूर कौमवार वि.सं. 1868 (1811 ई.), रा.रा.अभि. बीकानेर
16. ए.एस. अल्तेकर– ऐजूकेशनइन एनशियन्ट इण्डिया, पृष्ठ–3
17. ऋग्वेद, पृष्ठ–717
18. राजपूताना में ख्वाजामुईनुद्दीन चिश्ती, पृष्ठ–189
19. मीना गौड–मध्यकालीन भारत में सामाजिक एवं धार्मिक सुधार आन्दोलन, पृष्ठ–71
20. आयने अकबरी–ब्लेक मैन, पृष्ठ–278
21. एफ.ई.कीथ–ए हिस्ट्री ऑफ ऐजूकेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, पृष्ठ–129
22. के.एल.श्रीवास्तव एव चौबे–मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृष्ठ–511
23. सदेवस्तु सांवली–गोरी बात पृष्ठ–2–8
24. मोहन विजय–मानतुंग राजा अनेमानवती राणी रो रास, पृष्ठ–18–22
25. सचित्र रामचरित, न. 46 ओरियन्टल रिसर्च, इन्स्टीट्यूट उदयपुर
26. उपदेशमाला, पृष्ठ–40
27. डॉ. जी. एन. शर्मा–सोषियल लाइफ इन मिडाइवल राजस्थान, पृष्ठ–121
28. बख्तावरसिंह की प्रेयसी गायण जन महताव–मदिर की प्रशस्तियां, शोधपत्रिका पृष्ठ–40–46
29. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी–राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृष्ठ–149
30. पोर्ट फोलियो फाइल जोधपुर, न. 21, विभिन्न पत्र जनानी डयोड़ी महकमा खास, फा. न. 13, रा.रा.अभि. बीकानेर
31. जनानी ड्योढ़ी फा.न.13 रा.रा.अभि.बीकानेर
32. जोधपुर खरीता बही, खरीता परवाना खास बही नं. 2, पृष्ठ–10,22,34,218, रा.रा.अभि बीकानेर
33. जोधपुर अर्जी बही, वि.सं. 1824–42 (1767–85 ई.) नं. 1 पृष्ठ–4,5,14,15,19,32, राजस्थान, राज्य अभिलेखागार, बीकानेर
34. जोधपुर अर्जी बही वि.सं. 1824–42 (1767–85 ई.) न1 पृष्ठ–38,39,40,42,रा.रा.अभि बीकानेर
35. रतनलाल मिश्र, निरंजन सम्प्रदाय–स्थापत्य, कला एवं साहित्य, पृष्ठ–323
36. बी.एल. भदानी–ख्यात कवि उदयचन्द, बीकानेर का गजल, पृष्ठ–65, अंक 3, जुलाई 95
37. पुरूषोत्तम छंगाणी–जैसलमेर की साहित्यिक देन, जैसलमेर–सर्वोदय स्मारिका, पृष्ठ–17
38. डॉ. आर.पी. व्यास–राजस्थान का वृहद् इतिहास, भाग–प्रथम, द्वितीय पृष्ठ–451, राजसथान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर – 1998
39. पी.एल.रावत–सम्पूर्ण भारत में धार्मिक परम्परा और व्यवस्था, पृष्ठ–94
40. राजस्थान पत्रिका, पृष्ठ–8, नागरिक नगर परिक्रमा 19 अगस्त1977
41. करणीदान–सूरजप्रकाश 36.4, पुस्तक प्रकाश उम्मेद भवन पुस्तकालय जोधपुर
42. डॉ. गोपीनाथ शर्मा–सोशियल लाइफ इन मिडाईवल राजस्थान, पृष्ठ–278